''अभिज्ञानशाकुन्तल–मंगलाचरण में विराट् प्रकृति''

अखिलेश नारायण मिश्र*

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' कविकुलगुरु की सर्वाधिक लोकप्रिय, प्रसिद्ध तथा प्रकृति के सन्निकट रहने वाली कृति है। इस ग्रन्थारम्भ में कविकुलगुरु ने मंगलाचरण में अपने इष्ट व आराध्य शिव के उस स्वरूप को उकेरा है, जो शिव सम्पूर्ण प्रकृति में व उसके भिन्न–भिन्न उपादानों में समाहित हैं। यद्यपि कालिदास जैसे विद्वान् जिनकी भाषा के सार ब्रह्मा, सरस्वती या स्वयं वे ही समझ सकते थे ऐसे महाकवि की पुनीत गिरा को समझने के लिए हम जैसे अज्ञानमण्डित मस्तिष्क रखने वाले के सप्रयास किये गये आयास अलम् नहीं हैं फिर भी जो कुछ बन पड़ा है तथा जहाँ तक अदूरगामी या जड़ बुद्धि पहुँच सकी है, कृतज्ञता व विनम्रतापूर्वक प्रस्तुत है क्योंकि–

कालिदास गिरा सारं कालिदास तु सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः।।

सम्पूर्ण प्रकृति को उसके उपादानों सहित समेटे हुए हस्तामलकवत् प्रस्तुत करते हुए इस मंगलाचरण को देखिए–

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।[1]

प्रस्तुत मंगलाचरण में अपने इष्ट व अराध्य शिव के अष्टपूर्ति स्वरूप की कल्पना में सर्वप्रथम महाकवि ने 'अप' अर्थात् जल का चिन्वयन किया है जो विधाता की प्रथम रचना है। इस बात का स्पष्टीकरण मनुस्मृति के निम्न श्लोक से होता है–

अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवाऽसृजत्।[2]

संस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

यह 'नारा' कहा जाने वाला प्राकृतिक तत्व 'नर' का अति घनिष्ठ है। इसका प्रमाण मनुस्मृति में स्पष्ट कथित है।[3]

यद्यपि शिवमूर्ति स्वरूप हैं किन्तु उनके लोकव्यापी जटा पर विराजमान गंगा के रूप में किया जा सकता है–

गौरी–वक्र भुकुटि रचनां या विहस्येव केनैः।
शंभोः केश ग्रहणमकरोदिन्दु लग्नोर्मि–हस्ता।।[4]

लिङ्गपुराण के 12वें अध्याय के उत्तरार्द्ध में आया शिव का 'भव' नाम इनक जलात्मक स्वरूप का ही बोधक है।

शिव स्वयं अग्नि स्वरूप हैं अथवा शिव में ही अग्नि समाहित हैं इस तथ्य के प्रमाण वेदों, ब्रह्मण ग्रन्थों व अन्य अनेक स्थानों पर उपलब्ध होते हैं। 'यजुर्वेद' में अग्नि रूपी शिव के तीन स्वरूप बताये गये हैं। प्रथम पृथ्वी तल पर शिव पार्थिव अग्नि के रूप में विद्यमान हैं द्वितीय, जलमें शिव बड़वाग्नि के रूप मे तथा तृतीय, आकाश में अग्नि रूपी शिव विद्युत के रूप मे विद्यमान रहते हैं। यहाँ तक कि अथर्ववेद में शिव के अग्निस्वरूप से प्रार्थना इस प्रकार की गयी है–

यो अग्नौरुद्रो य अप्स्वन्त–
र्य ओषधीर्वीरूध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये।।[5]

ऋग्वेद 2/1/16 में 'त्वमग्नेरूद्रो' इस प्रकार स्पष्टतः शिव को अग्नि ही कह दिया गया है।

'शतपथ ब्राह्मण' में इसी बात को कुछ इस प्रकार कहा गया है–

'अग्निर्वै स देव'[6]

शिव आकाशीय विद्युत रूपी अग्नि के रूप में संहारक की भूमिका वहन करते हैं। यह प्राचीन काल से मान्य परम्परा रही है कि आकाशीय विद्युत देवराज इन्द्र का वज्र अथवा काल की लपलपाती हुयी जिह्वा है। इस स्वरूप के विषय में आचार्य बलदेव उपाध्याय ने कुछ इस प्रकार अपना मत दिया है–**''जिह्वया ईयमानम्''।**

इसी प्रकार अथर्ववेद में प्रार्थना की गयी हे कि यह आकाशीय विद्युत हमारे ऊपर न गिरकर अन्यत्र गिरावें–

मा नः सं स्त्रा दिव्येनाग्निना।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं प्रतयैताम्।।[7]

अन्यत्र एक स्थान पर विवाह के पश्चात् वापस मायके आयी पार्वती से

सखियाँ शिव से की गयी बातों के विषय में प्रश्न करती हैं तो वहाँ आदिशक्ति ने शिव के गले में नागराज, मस्तक पर अग्निदेव तथा शिर पर चन्द्रमा व जटा में देवनदी (गंगा) के होने के कारण एकान्ताभाव बताती हैं–

उरसि फणपतिः शिखिरललाटे
शिरसिविधुः सुरवाहिनी जटायाम्।
प्रिय सखी कथयामि किं रहस्यं
पुरमधनस्य रहोऽपि संसदेव।।

इसी प्रकार शिव की वन्दना एक श्लोक में उन्हें चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि के रूप में तीन नेत्रों वाला कहा गया है–

'वन्दे सूर्यशशाङ्क वह्िननयनं'

अतः स्पष्ट है कि कविकुलगुरु ने 'वहति विधिहुतं हविर्या' कहकर प्रकृति के अत्यावश्यक व प्रधान उपादान 'अग्नि' की तरफ जो संकेत किया है वह अग्निमय शिव के स्वरूप का परिचय कराने के लिए अलम् है। लिङ्गपुराण में शिव का 'पशुपति' नाम उनक अग्निस्वरूपा के प्रतिपादनार्थ ही प्रयुक्त हुआ है। 'अग्निमुखाः वै देवाः' के अनुसार देवताओं का मुख 'अग्नि' है।

होता (यजमान) हवन करते समय शिव का अंश माना जाता है। हवनकर्त्री होत्री, यह शब्द 'हू' धातु में 'तृच्' प्रत्यय 'ङीष' प्रत्यय लगाने पर बनता है। इससे तात्पर्य हवन करने वाले होता से है। आहुति देते समय शिवांश के रूप में मान्य 'होता' को कविकुलगुरु ने साक्षात् मूर्तिमान शिव मान लिया है। यज्ञाहुति व होता (होतृ) किस प्रकार प्रकृति के अंचलपट से आबद्ध रहते हैं। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद पुरुष सूक्त की यह ऋचा दर्शनीय है–

यत्पुरुषेण हविषां देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्ध।।[8]

यहाँ देवों का परमपुरुष को हवि के रूप में कल्पित करके किये जा रहे मानसिक यज्ञ में ग्रीष्म ऋतु ईंधन, वसन्त ऋतु घृत और शरद ऋतु विशिष्ट आहुति थी। इस ऋचा के माध्यम से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कविकुलगुरु ने शिव की प्रार्थना होता रूप में करके किस प्रकार प्रकृति से सम्बन्धित किया है। लिंगपुराण के 12वें अध्याय में वर्णित शिव का 'उग्र' नाम उनके यजमान स्वरूप का बोधक व परिचायक है। अष्टमूर्ति शिव का वर्णन करते समय उनके यजमान स्वरूप पर कुछ इस प्रकार प्रकाश डाला गया है–

''यजमानाह्वया मूर्तिः शिवस्य शिवदायिनः।।''

दोनों कालों का विभाजन करने वालों को धारण करने वाले शिव ही हैं।

यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से काल अर्थात् समय अखण्ड व अविभाज्य है तथापि व्यवहार हेतु उसका रात व दिन दो रूपों में विभाजन किया जाता है। दिनकर (दिवाकर) सूर्य तथा रात्रिकर (क्षपाकर) चन्द्रमा है, शिव को कविकुलगुरु ने इन दोनों को ही आश्रय देने वाला बताया है।

'वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्िननयनं' के अनुसार सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि शिव के तीन नेत्र हैं। भगवान चण्डीश्वर द्वारा अर्द्ध चन्द्र धारण करने की बात 'तत्र व्यक्तं द्वषदि चरण–न्यासमर्धेन्दुमोलैः' से भी पूर्णतः सिद्ध है।[9]

इस प्रकार ऋग्वेद में शिव को त्र्यम्बक कहा है जिसका निश्चित ही ऋग्वैदिक मन्त्रद्रष्टाओं ने प्रकृति में विद्यमान सूर्य, चन्द्रमा और आकाशीय विद्युत देखकर ही कल्पना किया गया। 'रुद्राष्टक मन्त्र' में चन्द्रमा और सूर्य से युक्त रहने वाले शिव की तरफ कुछ इस प्रकार संकेत किया गया है–

लसद्भालबालेन्दु कण्डेभुजंगा.....अखण्डं अजं भानु कोटिप्रकाशं।[10]

लिंग पुराण में सूर्यात्मा स्वरूप हेतु 'रुद्र' और सोमात्मा स्वरूप हेतु 'महादेव' नाम प्राप्त होते हैं।

कान का विषय 'शब्द' ही गुण है जिसका, अर्थात् आकाश। इस सम्बन्ध में आचार्य विश्वनाथ का कथन है–''आकाशस्य तु विज्ञेयः शब्दो वैशिषिको गुणः।'' इसी प्रकार तर्कसंग्रह में भी कथित है–''शब्दगुणकमाकाशम्।''

यह बात सर्वविदित है कि आकाश सम्पूर्ण रिक्त स्थानों पर व्याप्त है तथा प्रकृति को आवरण बनकर सम्पूर्ण संसार को आवृत्त किए हुए है। आकाश के शिव में समाहित होने का संकेत कविकुलगुरु ने स्वयं अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर दिया है। इस प्रकार का संकेत विष्णु पुराण में भी प्राप्त होता है जिसको आगे प्रदर्शित किया जायेगा। लिङ्गपुराण में आकाश रूपी रूद्र हेतु 'भीम' नाम प्राप्त होता है।

समस्त बीजों के उद्भव का कारण अर्थात् पृथ्वी क्योंकि 'वसुन्धरा काल इवोप्रबीजाः'। शिव के पृथ्वी तत्त्व से युक्त होने का तात्पर्य है कि शिव सभी के उत्थान व पतन के कारण भी हैं। जिस प्रकार प्रकृति अपने समस्त पुत्रों को समान रूप से आश्रय देती है तथा उनके जीवन पर्यन्त उन्हें अपने विस्तीर्ण अंक में खेलने व विहार करने के लिए स्वतन्त्र रखती है। इस प्रकार के पक्षपात रहित प्रकृति के स्वरूप को दिखाते हुए कविकुलगुरु शिव को इससे युक्त बताते हैं। अनेक स्थानों पर शिव के पृथ्वी तत्व से युक्त होने की बात कही गयी है। लिङ्गपुराण के 12वें अध्याय के उत्तरार्ध में पृथ्वी तत्व से युक्त रहने वाले शिव (रूद्र) का नाम 'शर्व' बताया गया है।

जिससे सम्पूर्ण प्राणी प्राणवान होते हैं अर्थात् वायु। शिव को प्रकृति के इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण वरदान से युक्त बताया गया है। ऋग्वेद 1/114/6 में रूद्र को मरुद्गुणों का पिता बताया गया है।

दृष्ट्वा परव्यथां सन्त उपकुर्वन्ति लीलया।
दितेगर्भव्यथां हत्वा रूद्रोऽभून्मरुतां पिता।।[11]

नीतिमंजरी के उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है कि किस प्रकार रुद्र मरुतों के पिता हैं तो भला वे स्वयं मरुत से रहित कैसे हो सकते हैं। अपने मंगलाचरण में कविकुलगुरु ने अपने ज्ञान व शास्त्रावगाहन से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर सम्पूर्ण प्रकृति को शिव में समायी हुयी दिखायी है। लिंगपुराण में वायु के स्वरूप वाले रुद्र को 'ईशान्' कहा गया है।

कविकुलगुरु ने इन अष्टरूप शिव को प्रत्यक्ष कहा है। यहाँ प्रत्यक्ष का अर्थ केवल दृष्टिगोचर मात्र न होकर अन्य इन्द्रियों द्वारा अनुभूत होने वाला भी है। प्रकृति के जिन तत्वों का कविकुलगुरु ने हमारे समक्ष अपने इष्ट व आराध्य त्रिभुवनगुरु के रूप में वन्दन किया है, वे वास्तव में हमारे किसी न किसी इन्द्रिय के विषय हैं। यद्यपि अदूरगामी और अस्थिर प्रज्ञा का आश्रय लेकर इन अष्टतत्वों वाले शिव के शिवस्वरूप (कल्याणकारी) में स्थित प्रकृति का संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयास किया गया किन्तु पूर्णतः इन्हीं आठ तत्वों से युक्त 'विष्णु पुराण' में उक्त शिव के प्रकृतिस्वरूप का संकेत अनिवार्य व करणीय है–

जलं वह्निस्तथा यष्टा सूर्याचन्द्रमसौ तथा।
आकाशं वायुरग्निः मूर्त्तयोऽष्टौ पिनाकिनः।।[12]

पूर्णतः प्रकृति के रूप में पूजित शिव के आठों स्वरूपों की ओर संकेत करने के साथ–साथ कविकुलगुरु ने हमारी रक्षा हेतु भी उनसे प्रार्थना किया है। यह बात कल्पनीय व ध्यानाकर्षणीय है कि किस प्रकार इस मंगलाचरण में प्रकृति अपने पूर्ण रूप को अनावृत्त किये हुए मूर्तिमान रूप से प्रकट है।

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणत बहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः।
कान्तासम्मिश्रदेहोऽप्य विषय मनसां यः परस्ताद्यतीनाम्।।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्न जगदपि तनुभिर्विभ्रतो नाभिमानः।
सन्मार्गलोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः।।[13]

मालविकाग्निमित्रम् के इस मंगलाचरण में यद्यपि कविकुलगुरु ने प्रत्यक्ष रूप में तो अपने इष्ट महादेव की प्रार्थना की है किन्तु गहराई से देखने पर उनके द्वारा संकेत किये गये प्रकृति के परोक्ष रूप का भव्यदर्शन होता है। यह मंगलाचरण इसके पूर्व वर्णित मंगलाचरणों से सुसम्बद्ध व ग्रहीत सामग्री वाला है।

यहाँ देवाधिदेव को कविकुलगुरु ने समस्त ऐश्वर्य से युक्त होने पर भी तथा सभी को कृपा प्रसाद देने वाले शिव को कृत्तिवासाः (हाथी के चर्म मात्र का वस्त्र वाला) कहा है। यही स्वभाव प्रकृति का भी है। स्वयं सम्पूर्ण साधनों से युक्त होने पर भी वह उनका उपभोग न करके उनसे परोपकार ही करती है– शुक्ल यजु0 16/51 में भी शिव को 'कृतिवंसान' कहा गया है।

परोपकाराय वहन्ति नद्यः परोपकाराय दुहन्ति गावः।
परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकारार्थमिदं शरीरं।।

यहाँ कविकुलगुरु ने शिव के विषय में 'कान्तासम्मिश्रदेहों' कहा है जिसका बहुविध विवेचन प्रसंगवश 'रघुवंशम्' के मंगलाचरण में कर दिया गया है। 'कुमारसंभवम्' में शिव के स्वरूप का यह वर्णन दर्शनीय है–

वपुर्विपाक्षमक्ष–जन्मता, दिगम्बत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यव्दालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति, किं व्यस्तमपित्रिलोचने।।

प्राप्त प्रमाणों पर विद्युद्ध्यानाकर्षण उचित होगा–

रुद्रेणेदुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा[14]

शिवपार्वती के एकाकार होने का प्रमाण देते हुए यहाँ तक कहा गया है कि इस प्रकार संश्लिष्ट रूप के कारण ही शिव का वाम भाग पन्ना की तरह श्याम (नीला) और दक्षिण अंग में शक्ति के स्थित होने से मूँगे की लाल दिखाई देता है। इसी से महादेव का 'नील लोहित' नाम भी सार्थक होता है।[15]

शिवपुराण में भी कथित है–

न शिवेन बिना शकिर्तन च शक्त्या विना शिवः।

यहाँ भी कविकुलगुरु ने कहा है कि आठ शरीरों से संसार को व्याप्त करके भी जिसे तनिक भी अभिमान नहीं है। इस अष्ट शरीरधारी शिव का संक्षिप्त विवेचन 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के मंगलाचरण को लेकर किया गया है तथापि कुछ तथ्य द्रष्टव्य है–

दीक्षितं ब्राह्मणं प्राहुरात्मनं च मुनीश्वरः।
यजमानाह्या मूर्ति शिवस्य शिवदायिनः।।

ये अष्टमूर्ति शिव प्राकृतिक तत्वों के रूप में साक्षात् प्रकृति का रूप लेकर सम्पूर्ण संसार को आच्छादित किए हुए हैं। इन आठ स्वरूपों पर 'लिंगपुराण' में कुछ इस प्रकार प्रकाश पड़ा है–

1. पृथ्वी–शर्व, 2. जलात्मक–भव, 3–अग्नि–पशुपति, 4. वायु–ईशान, 5–आकाश–भीम, 6. सूर्यात्मा–रूद्र, 7. सोमात्मा–महादेव, 8. यजमानमूर्ति–उग्र।

कुछ लोग इन्हें रूद्रों का स्वरूप बताते हुए इन्हें शिव से अलग कहते हैं

जबकि वैदिक ग्रन्थों[16] में रूद्रों और शिव की एकता का वर्णन है। कविकुलगुरु ने सन्मार्ग दिखाने वाले तामसी वृत्ति वाले महादेव का वन्दन किया है जो प्रकृति के रूप में स्थित होकर स्थावर और जंगम सभी की रक्षा व पालन करते हुए नाश तथा उद्भव के कारण हैं। 'शिव' का शाब्दिक अर्थ ही 'कल्याणकारी' है अर्थात् जो भी चीजें हमारे लिए कल्याणकारी हैं सब शिव हैं–

स्थावर–जङ्गमानां सर्गस्थिति प्रत्यवहार–हेतुः।[17]

प्रकृति के विराट् स्वरूप को लिए हुए सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त शिव के पूर्ण स्वरूप का वर्णन मुझ जैसे मूढ़ व अल्पमति द्वारा न संभव है न ही बोधगम्य फिर भी जो कुछ निसर्गदुर्बोधित इस मस्तिष्क में आया, किया गया। शिव के प्रकृतिस्वरूप को व्यापक स्वरूप का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है कि ऋग्वेद प्रथम मण्डल 114वाँ सूक्त, द्वितीय मण्डल 33वाँ सूक्त तथा सप्तम मण्डल 46वाँ सूक्त शिव के स्वरूपों का वर्णन करते हैं। इनके अतिरिक्त यजुर्वेद का रूद्राध्याय, अथर्ववेद के 11वें काण्ड का द्वितीय सूक्त भी शिव का ही वर्णन करते हैं।

कविकुलगुरु ने भी कुमारसंभवम् में अपनी बातों को कैसा वैकल्पिक रूप दिया है–

विभूषणोभ्दासि पिनद्धभोगि वा गजाजिनालम्बि दूकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दु–शेखरं, न विश्वमूर्तेरवधार्य ते वपुः।।[18]

ऋतुसंहार नाम से ही स्पष्ट है कि यह खण्डकाव्य पूरी तरह से प्रकृति से सुसम्बद्ध है। इसके मंगलाचरण से ही इसमें विद्यमान प्रकृति की क्रीडा का स्फुट रूप दिखायी देने लगता है।

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारिसंचयः।
दिनान्त रम्योऽभ्युपशान्त मन्मथो निदाधकालोऽयमुपागतः प्रिये।।[19]

प्रस्तुत श्लोक में यक्ष, अपनी यक्षणी को ग्रीष्म ऋतु अर्थात् आयी हुयी गर्मी से अवगत कराते हुए बताता है कि सूर्य तपने लगा है चन्द्रमा की लोग इच्छा करने लगे हैं।

महाकवि कालिदास ने सूर्य को सर्वप्रथम श्लोक में रखा है और प्रकृति में सूर्य का क्या स्थान है, इससे सभी लोग अवगत हैं। ऋग्वेद का अत्यन्त शक्तिशाली निम्नलिखित मन्त्र सूर्य देव को समर्पित है–

ऊँ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रयोदयात्।[20]

सूर्य देव को सविता और गायत्री कहा गया है। हमारे समक्ष यम गायन्ति

त्रयी अर्थात् जिसे तीनों (चारों) वेद गाते हैं, वह गायत्री है। सविता पर यास्क ने कुछ इस प्रकार प्रकाश डाला है–

''सविता सर्वस्य प्रसविता''[21]

''सूर्यदेव सहस्रांशो तेजो राशे जगत्पते'' से भी स्पष्ट है कि सूर्य देव सम्पूर्ण संसार के स्वामी हैं। ऋग्वेद का 'सवितृसूक्त', केयूरक का 'सूर्यशतक' आदि अन्यान्य आधारों पर सूर्य की प्राकृतिक महत्ता सिद्ध होती है।

सूर्य के पश्चात् महाकवि ने मंगलाचरण में चन्द्रमा को स्थान दिया है क्योंकि ये दोनों लोक को नियमित व नियन्त्रित सा करते हैं–

यात्येकतोऽस्त शिखरं पतिरोषधीना
माविष्कृतोऽरुणपुरः सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां
लोकोनियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।[22]

आदिकवि वाल्मीकि ने चन्द्रमा की कल्पना रात्रिरूपी नायिका के मुख के रूप में किया है।[23]

इस प्रकार प्रकृति के अंग के रूप में उल्लिखित सूर्य और चन्द्रमा का महत्व वर्णन करना तो देखने वालों को अन्धा समझने के समान होगा। सूर्य और चन्द्रमा के पूर्व जल की चर्चा की गयी है। यह जल विधाता की प्रथम रचना व नर से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है–

''अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवाऽसृजत्''[24]
''आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नस्यूनवः।''[25]

ऋग्वेद का 'वरुणसूक्त' प्राकृतिक अंग के रूप में वर्णित जल का महत्व व उसके गुणों के प्रतिपादनार्थ अलम् है। वर्तमान काल में ऐसा कौन है जो जल के प्राकृतिक संसाधन व प्रकृति प्रदत्त अनुपम भेंट होने से अनभिज्ञ है।

मंगलाचरण की पदश्रृंखला में कविकुलगुरु ने 'दिनान्त रम्यो' पदों को प्रयुक्त किया है। दिनान्त सन्ध्या को कहते हैं। कविकुलगुरु ने इस संध्या को दिन और रात्रि के बीच विद्यमान माना है–

तदन्तरे सा विरराज धेनु–
र्दिन क्षपा मध्यगतेव सन्ध्या।।[26]

प्रकृति की गोंद में रहने वाले लगभग सभी लोग ग्रीष्मकालीन सन्ध्या के रमणीय रूप से परिचित हैं। इसी प्रकार के भावों से लगभग मिलता–जुलता श्लोक कविकुलगुरु की रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी प्राप्त होता है–

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्ग सुरभिवनवाताः।

प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।[27]

सूर्य, चन्द्र, जल, सन्ध्या आदि प्रकृति के अंगों को स्थान देने वाले कविकुलगुरु के इस मंगलाचरण में वर्णित प्रकृति स्पष्टतः दृश्यमान होती है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–डॉ0 राजदेव मिश्र, घनश्यामदास एण्ड सन्स, चौक, फैजाबाद, 2006, पृ0सं0–95
2. मनुस्मृति–8वाँ श्लोक।
3. आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
4. मनुस्मृति–10वाँ श्लोक।
5. अथर्ववेद–7/83
6. शतपथ ब्राह्मण–1/7/3.8
7. अथर्ववेद–11/2/26
8. ऋग्वेद–10/90/6
9. ऊँ त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
   उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।
10. रुद्राष्टकम्, तुलसीदास, मन्त्र–तीसरा, पाचवाँ
11. नीतिमंजरी, साताराम जयराम जोशी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1998, पृ0 92
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ0 राजदेव मिश्र, घनश्यामदास एण्ड सन्स, चौक, फैजाबाद, 2006, पृ0 98
13. मालविकाग्निमित्रम्–1/1
14. मालविकाग्निमित्रम्– डॉ0 रमाशंकर पाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 11
15. वामे मरकत श्यामा दक्षिणे विद्रुमारूणा।
    देवता दम्पतिमयी सा में कामदुधा भवेत्।।
16. वैदिक ग्रन्थ–2/33/7
17. रघुवंशम्, 2/44
18. कुमारसंभवम्– श्री पं0 प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, भूमिका भाग–1
19. ऋतुसंहार, 1/1

20. ऋग्वेद
21. निरुक्त (निघण्टु)
22. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/2
23. रात्रिः शशाङ्कोदित सौम्यवक्त्रा
24. मनुस्मृति–8वाँ श्लोक
25. मनुस्मृति–10वाँ श्लोक
26. रघुवंशम्
27. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–1/3